काल निर्धारण की विधियां

विपुल कीर्ति

प्रागैतिहासिक काल में ऐसी बहुतेरी घटनाएं लगातार हुई थीं जिनमें कई पेड़ व प्राणी धरती में दब गए थे; कुछ गहरे समुद्र में दबे तो कुछ बर्फ में। अनेक घटनाओं के अवशेष जीवाश्मों (फॉसिल) के रूप में आज भी प्राप्त होते रहते हैं। कुछ दिन, सप्ताह, माह व साल पहले की घटनाओं की गणना तो याददाश्त के भरोसे करना आसान है लेकिन जीवाश्मों का काल निर्धारण आसान नहीं है। इस समस्या से निपटने के लिए पुरातत्वशास्त्रियों ने काल निर्धारण की ऐसी विधियां खोज निकाली हैं जिनसे सटीक या तुलनात्मक उम्र पता लगाई जा सकती है।

काल या आयु निर्धारण मुख्यतः दो विधियों द्वारा किया जाता है - सापेक्ष और निरपेक्ष।

सापेक्ष काल निर्धारण

वे तमाम विधियां जो विभिन्न घटनाओं के समय का केवल तुलनात्मक अनुमान ही देती हैं सापेक्ष काल निर्धारण विधियां (रिलेटिव डेटिंग मेथड्स) कहलाती हैं। इस प्रकार से समय की गणना करना सापेक्ष काल निर्धारण कहलाता है। उदाहरण के लिए मेरी नानी ने कहा कि उनका जन्म जलियांवाला बाग हत्याकांड के तीन साल पहले हुआ था। अर्थात नानी ने किसी घटना से सम्बंध जोड़ते हुए अपनी आयु का निर्धारण किया। वे महीनों व दिनों को सही-सही नहीं दर्शा सकीं। सापेक्ष विधियों में भी किसी पुरातात्विक अवशेष या जीवाश्म की आयु वर्षों में नहीं बताई जाती है। आयु का निर्धारण किसी दूसरे पुरावशेष या घटना से सम्बंध जोड़ते हुए किया जाता है। इस प्रकार से घटनाओं को समय के अनुसार क्रमबद्ध किया जाता है। ये विधियां कई प्रकार की होती हैं।

स्तरीकरण (स्ट्रेटिफिकेशन) - यह काल निर्धारण की सरलतम विधियों में से एक है। आसान शब्दों में इस विधि से आशय है 'सबसे नीचे सबसे पुराना'। इस सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी कई परतों से बनी है। परतों का निर्माण मिट्टी, बालू, कंकड़, पत्थर आदि के जमने से हुआ है। हम जानते हैं कि विश्व की लगभग सभी नदियां, झीलें और तालाब सदियों से मिट्टी, मलबे व कचरे को इकट्ठा करते-करते उथले होते जा रहे हैं। इस प्रकार प्राचीनतम परत या स्तर सबसे नीचे है और नवीनतम सबसे ऊपर। इन परतों के बनते समय विभिन्न कण क्रमबद्ध रूप में जमते जाते हैं और एक विशिष्ट काल में रहने वाले प्राणी एक निश्चित परत में ही पाए जाते हैं।

स्तरीकरण विधि में इन्डेक्स फॉसिल या मार्कर फॉसिल का भी उपयोग किया जाता है। इन्डेक्स फॉसिल प्राकृतिक अवस्था में एक निश्चित स्तर से प्राप्त होते हैं। ये जीवाश्म उन प्राणियों के होते हैं जो उस परत के बनते समय वहां पाए जाते थे।

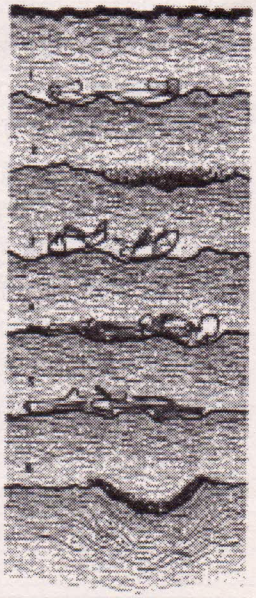

लेकिन इस विधि से काल निर्धारण करने में कई दिक्कतें भी आती हैं। मसलन भूकम्प, मकानों की नींव खोदकर भरे गए गड्ढे तथा भू-अपरदन जैसी स्तरों में उथल-पुथल करने वाली घटनाओं की वजह से काल का निर्धारण मुश्किल हो जाता है। उदाहरण के लिए जब एक ही स्तर से दो अलग तरह के जीवाश्म प्राप्त हों तो समय

निर्धारण मुश्किल हो जाता है। जैसे होमो हैबिलिस द्वारा रचित ओल्डुवान तथा होमो इरेक्टस द्वारा रचित एश्यूली क्रमशः 20 तथा 15 लाख वर्ष पूर्व के थे तथा एक ही स्थान से प्राप्त हुए हैं।

प्रारूप विधि : इस विधि में वस्तु की आकार-संरचना तथा उसके निर्माण में प्रयुक्त विशिष्ट शैली का अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के लिए अगर एक ही स्थान से दो तरह के पत्थरों से बने औज़ार प्राप्त हुए हैं तो दोनों की आपस में तुलना से समानता-असमानता परखी जाती है।

लेकिन इस विधि का प्रयोग बहुत सीमित है। पत्थर से बने औज़ार, मिट्टी के बर्तन, मूर्तियों तथा अन्य वस्तुओं पर ही इस विधि का इस्तेमाल किया जा सकता है। इस विधि द्वारा निश्चित समय की बजाय वस्तुओं को प्राचीन-वर्तमान क्रम में जमाया जा सकता है।

पराग परीक्षण विधि : इसके तहत वनस्पतियों के पराग कणों के माध्यम से तिथि निर्धारण किया जाता है। पराग कण अध्ययन को पोलीनोलॉजी कहा जाता है। इस विधि की खोज लेनर वॉन फेस्ट ने की थी। पौधों द्वारा पराग कण का वितरण एक सामान्य तथा आवश्यक प्रक्रिया है। पराग कण बहुत छोटे, हल्के, टिकाऊ तथा वनस्पति विशिष्ट होते हैं। प्रागैतिहासिक मिट्टी से प्राप्त पराग कणों से उस काल के पौधों तथा पर्यावरण को समझा जा सकता है। उदाहरण के लिए नियेन्डरटल जीवाश्मों के लिए प्रसिद्ध इराक की शनीदर-5 गुफा में दफन नियेन्डरटल के पास से सात विभिन्न प्रकार के पराग कण प्राप्त हुए हैं। ये ग्रेप हायसिन्थ, यारो, कार्नफ्लावर, बेनावेस थ्रिसेल, ग्राउंडसेल, वुडी हार्सटेल और एक प्रकार के मेलोव के हैं। इनमें से कुछ दांत के दर्द, सूजन, पेशियों के दर्द, मोच आदि में बहुत उपयोगी रहे होंगे। वैज्ञानिक इससे दो निष्कर्ष निकालते हैं; पहला, नियेन्डरटल फूलों के साथ शवों को दफनाते थे और दूसरा, नियेन्डरटल मानव को चिकित्सा में उपयोगी पौधे ज्ञात थे।

लेकिन अन्य विधियों की ही तरह इस विधि की भी कई सीमाएं हैं। जैसे ध्रुवीय क्षेत्रों में बर्फ के कारण वनस्पतियां नहीं पाई जाती हैं। कुछ क्षेत्रों में अक्सर आग लग जाती है तथा क्षारीय व मरुस्थलीय क्षेत्र में पराग कण नष्ट होने से ये विधियां अनुपयोगी हैं।

फौना-फ्लोरा विधि : इस विधि में वनस्पतियों व प्राणियों में होने वाले विकासीय परिवर्तन तथा उनके जीवाश्म प्रमाणों को वर्तमान में उपस्थित जीवितों से मिलाकर काल निर्धारण किया जाता है। उदाहरण के लिए हिम युग में केवल वे पौधे बचे रहे होंगे जो उस वातावरण के अनुकूल थे लेकिन हिमयुग की समाप्ति पर उनमें क्या-क्या परिवर्तन हुए? उन्हीं पौधों के वंशज क्या आज भी जीवित हैं? इस प्रकार जीवाश्मी प्रमाणों से हिम युग की वनस्पतियों तथा प्राणियों, उनके अनुकूलन तथा मौजूदा प्राणियों से उनके अन्तर जाने जा सकते हैं।

जीवाश्म विधि : इस विधि के अनुसार वे स्थान जहां पर विशेष विलुप्त जीवों के जीवाश्म प्राप्त होते हैं, वे अधिकांशतः पुराने हैं। जिन स्थानों पर ऐसे जीवाश्म नहीं पाए जाते वे समान्यतः नए हैं।

फ्लोरीन विधि : यह विधि हड्डी वाले प्राणियों (वर्टिब्रेट्स) के लिए ही उपयुक्त है। इस विधि का आधार यह है कि एक ही स्थान पर पाई गई अस्थियों में फ्लोरीन की मात्रा लगभग एक जैसी होती है। इससे यह आसानी से पता लगाया जा सकता है कि विभिन्न जीव एक ही परत या एक ही काल के हैं या नहीं। सभी हड्डियां तथा दांत मुख्यतः कैल्शियम व फॉस्फेट से बने होते हैं। पानी में उपस्थित फ्लोरीन इनके अवशेषों से क्रिया कर फ्लोरोपेटाइट नामक अक्रिय व टिकाऊ रसायन बनाती है। जैसे-जैसे हड्डी या दांत पुराना होता जाता है पानी से फ्लोरीन प्राप्त होती जाती है। इस प्रकार हड्डी जितनी पुरानी होती है उसमें फ्लोरीन की मात्रा उतनी ज़्यादा होती है।

इस विधि की उपयोगिता का एक बढ़िया उदाहरण है 'पिल्टडाउन' (देखें बॉक्स)।

निरपेक्ष विधियां

वे सभी विधियां जो काल को निश्चित वर्षों की गिनती में बताती हैं निरपेक्ष विधियां कहलाती हैं। इन विधियों के लिए मुख्यतः रेडियोएक्टिव तत्वों का उपयोग होता है।

बात 1912 की है जब इंग्लैण्ड के ससेक्स में स्थित पिल्टडाउन खदान से चार्ल्स डॉसन को एक खोपड़ी प्राप्त हुई। दिखने में यह खोपड़ी मानव पूर्वज की लगती थी। खोपड़ी के लक्षण ऐसे थे कि वह मानव तथा वनमानुष के मिश्रित लक्षण वाली कड़ी लगती थी; निचला जबड़ा बिल्कुल वनमानुष सरीखा और खोपड़ी की भौहें मनुष्य जैसी। विशेष बात यह थी कि वह इंग्लैण्ड से प्राप्त हुई थी। भ्रम इस बात पर था कि जिन परतों से यह खोपड़ी प्राप्त हुई थी वह प्लायोसीन से प्लिस्टोसीन युग की थी। उसका इन युगों में पाया जाना असम्भव-सा था।

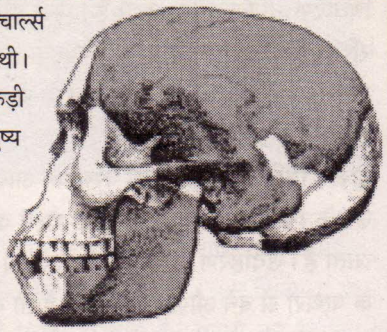

समय बीतने के साथ मनुष्य पूर्वजों के जीवाश्म अफ्रीका से प्राप्त होते गए। पिल्टडाउन खोपड़ी जैसा कोई अन्य जीवाश्म इंग्लैण्ड तथा विश्व के किसी भी भाग से प्राप्त नहीं हो सका। हालांकि एक और पिल्टडाउन खोपड़ी 1915 में पूर्व स्थान से प्राप्त हुई थी। पिल्टडाउन प्रथम की खोज पर कुछ वैज्ञानिकों को शक था कि खोपड़ी तथा इसका निचला जबड़ा अलग-अलग प्राणियों के हैं। पर पिल्टडाउन द्वितीय की खोज से विरोधी चुप हो गए थे। उस समय विचारधारा ऐसी थी कि मानव तथा वनमानुष के मिश्रित लक्षणों वाला कोई जीव ही हमारा पूर्वज होगा। अन्त में 1953 में फ्लोरीन परीक्षण विधि द्वारा पता चला कि पिल्टडाउन मानव में फ्लोरीन की मात्रा, उसी के साथ प्राप्त हुई कुछ अन्य हड्डियों में पाई गई फ्लोरीन का केवल पांचवा भाग थी। खोपड़ी को रंग-रोगन से पुराना दिखाने की कोशिश की गई थी। यह एक अनोखा उदाहरण है जिसमें वर्षों तक इस धोखाधड़ी का शिकार बने रहने के बाद वैज्ञानिक तकनीक के ज़रिए वैज्ञानिकों ने भूल सुधार की।

रेडियोएक्टिव खनिजों द्वारा काल निर्धारण : 1896 में ऐंटोनी बेकरेल नामक फ्रांसिसी भौतिकशास्त्री ने कुछ प्राकृतिक अयस्कों में से अदृश्य किरणें उत्पन्न होने का पता लगाया। इस प्रकार अदृश्य किरणों के स्वतःउत्सर्जन की प्रक्रिया का नाम रेडियो एक्टिविटी और जिन पदार्थों से ये किरणें उत्सर्जित होती हैं उन्हें रेडियो एक्टिव कहा गया। कुछ ही वर्षों में बहुत से रेडियो एक्टिव तत्व खोज लिए गए।

ये किरणें दरअसल पदार्थ के विघटन के कारण निकलती हैं। कई तत्वों में यह गुण होता है कि वे स्वतः ही विखण्डित होते रहते हैं। प्रत्येक तत्व के विखंडन की गति निश्चित होती है। विखंडन की गति ताप, दाब जैसे वातावरण के सभी घटकों से अप्रभावित रहती है।

विखंडन के दौरान रेडियो एक्टिव तत्व किसी अन्य तत्व में परिवर्तित होते रहते हैं। प्रायः निम्नलिखित रेडियो एक्टिव परिवर्तन काल निर्धारण के उपयोग में लाए जाते हैं - यूरेनियम से लेड, थोरियम से लेड, रूबीडियम से स्ट्रांशियम, पोटेशियम से आर्गन, कार्बन-14 से नाइट्रोजन आदि।

रेडियो एक्टिविटी की गति नापने का तरीका काफी रोचक है। एक निश्चित समय के बाद एक रेडियो एक्टिव पदार्थ पूर्व मात्रा से आधा ही रह जाता है। किसी एक रेडियो एक्टिव तत्व के परमाणुओं की संख्या जितने समय में उसकी प्रारंभिक संख्या की आधी रह जाती है, उसे उस तत्व का अर्द्धजीवनकाल कहते हैं। विभिन्न रेडियो एक्टिव पदार्थों का अर्द्धजीवनकाल अलग-अलग होता है, जैसा कि तालिका में बताया गया है। शुरू में तत्व की जितनी भी

रेडियो एक्टिव तत्वों के अर्द्धजीवनकाल	
पोटेशियम-40	1.25 अरब साल
रुबीडियम-87	48.8 अरब साल
थोरियम-232	14.0 अरब साल
यूरेनियम-235	70.4 करोड़ साल
यूरेनियम-238	4.47 अरब साल
कार्बन-14	5730 साल

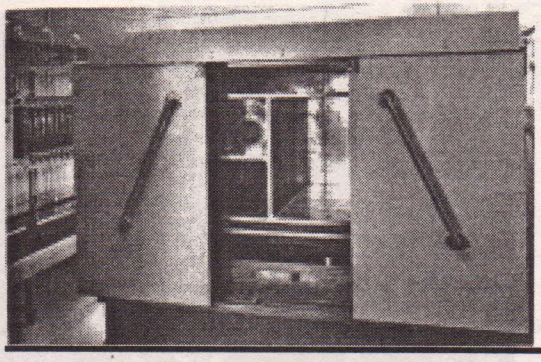

कार्बन डेटिंग में प्रयुक्त किया जाने वाला उपकरण (बाएं) और कार्बन-14 की विखंडन दर की खोज करने वाले डॉ. विलियर्ड लिबी (दाएं)

मात्रा ली जाए इस अवधि में वह आधी रह जाएगी।

अपनी निश्चित रेडियो एक्टिविटी के कारण उपरोक्त सभी तत्वों का प्रयोग काल मापी के रूप में किया जा सकता है। वे तत्व जिनका अर्द्धजीवनकाल बहुत कम है आज विश्व में नगण्य मात्रा में उपस्थित हैं जबकि प्रारम्भ में ये प्रचुर मात्रा में थे।

कार्बन-14 विधि : भूगर्भशास्त्री, मौसम विज्ञानी, मानवशास्त्री तथा पुरातत्ववेत्ता बहुत-सी घटनाओं का समय रेडियोकार्बन या कार्बन-14 विधि द्वारा बता सकते हैं। सामान्य कार्बन के परमाणु को कार्बन-12 कहते हैं। C-12 के प्रत्येक परमाणु के केन्द्रक में छः प्रोटॉन व छः न्यूट्रॉन होते हैं। कार्बन का एक और आइसोटोप कार्बन-14 है। यह रेडियो एक्टिव कार्बन है। इसमें दो अतिरिक्त न्यूट्रॉन भी हैं। C-14 में जब रेडियो एक्टिव विघटन होता है तो अतिरिक्त न्यूट्रॉन व ऊर्जा बाहर निकलती है और यह स्थिर व सामान्य C-12 में बदल जाता है। कार्बन-14 का निर्माण वायुमण्डलीय नाइट्रोजन पर लगातार ब्रह्माण्ड किरणों (कॉस्मिक किरणों) की बौछार के कारण होता है। इस प्रकार निर्मित कार्बन-14 वायुमण्डल की ऑक्सीजन के साथ जुड़कर कार्बन डाई ऑक्साइड का निर्माण करता है। प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में पौधे वायुमण्डल की कार्बन डाई ऑक्साइड व पानी से भोज्य पदार्थ का निर्माण करते हैं। भोजन के साथ ये कार्बनिक यौगिक जीवों में आ जाते हैं।

वैज्ञानिकों का मानना है कि जब से पृथ्वी का निर्माण हुआ है तभी से कॉस्मिक किरणों की बौछार वायुमण्डल में नाइट्रोजन को C-14 में बदलती रही है। चूंकि वायुमण्डल में नाइट्रोजन की मात्रा स्थिर है इसलिए बनने वाला C-14 भी स्थिर है। वैज्ञानिकों को वर्तमान वायुमण्डल में C-14 व C-12 का अनुपात भी पता है। बहुत से वैज्ञानिक इस अनुपात को स्थिर मानते हैं। यही अनुपात सजीवों में भी रहता है। जब तक कोई जीवधारी जीवित रहता है उसमें रेडियो एक्टिव कार्बन-14 तथा कार्बन-12 के बीच साम्य बना रहता है। जब कोई प्राणी मरता है तो उसमें बाहर से कार्बन-14 आना बन्द हो जाता है। मृतक के शरीर में उपस्थित कार्बन-14 धीरे-धीरे विखंडित होने लगता है। इस प्रकार प्राणी की मृत्यु के बाद कार्बन-14 की मात्रा विखंडन के कारण घटती जाती है और कार्बन-14 तथा कार्बन-12 का अनुपात घटता जाता है। इस प्रकार रेडियो कार्बन काल निर्धारण के रूप में बताएं तो वह जीवाश्म जिसमें कार्बन-14 की मात्रा जितनी कम होगी वह उतना ही पुराना होगा। कार्बन-14 का अर्द्धजीवनकाल 5730 वर्ष है अर्थात 5730 वर्ष बाद एक जीवाश्म में कार्बन-14 की मात्रा आधी रह जाएगी तथा अगले 5730 वर्ष बाद यह मात्रा एक चौथाई रह जाएगी। लगभग 50,000 वर्ष बाद एक जीवाश्म में कार्बन-14 की मात्रा इतनी कम रह जाएगी कि उसे मापा ही नहीं जा सकेगा। इसलिए कार्बन-14 विधि 50,000 वर्ष पूर्व या इससे ज़्यादा आयु की गणना के काम नहीं आती है।

पोटेशियम आर्गन (K-Ar) विधि : जब 50,000 वर्ष से ज़्यादा पुराने जीवाश्म या शैलों की उम्र पता करनी हो तो कार्बन-14 विधि अनुपयोगी हो जाती है। ऐसी स्थिति में पोटेशियम-आर्गन विधि का उपयोग किया जाता है। इस विधि की खोज सन् 1948 में हुई थी। पोटेशियम अधिकांशतः चट्टान (शैल) बनाने वाले खनिज में पाया जाता है। सामान्य पोटेशियम के साथ-साथ चट्टानों में रेडियो एक्टिव पोटेशियम-

40 (K-40) भी पाया जाता है। विखंडन द्वारा पोटेशियम-40 का 89 प्रतिशत हिस्सा कैल्शियम-40 में और बचा हुआ 11 प्रतिशत भाग आर्गन-40 में बदल जाता है। आर्गन-40 एक अक्रियाशील गैस है।

K-Ar विधि दूसरी विधियों से इस बात में भी अलग है कि इस विधि में आर्गन गैस की मात्रा मापी जाती है। यह विधि उन चट्टानों के काम आती है जो ज्वालामुखी से निकले लावे के ठण्डे होने से बनी हैं। ज्वालामुखी के ठण्डे हो जाने और पोटेशियम-40 के विखंडन से चट्टान के अन्दर लगातार आर्गन गैस बनकर कैद रहती है। जैसे-जैसे चट्टान पुरानी होती जाती है पोटेशियम-40 के विखंडन से आर्गन-40 बनती जाती है। अर्थात एक नवजात चट्टान में आर्गन शून्य होती है।

इस विधि में मानकर चला जाता है कि किसी नमूने के जीवनकाल में पोटेशियम तथा आर्गन की कोई मात्रा न तो बाहर से मिलाई गई और न ही नमूने से निकाली गई। पोटेशियम-आर्गन विधि का महत्व इस कारण से भी है कि इसके द्वारा अनेक प्रकार के खनिजों की आयु का निर्धारण किया जा सकता है। ओल्डबाई जार्ज (पूर्वी अफ्रीका) व इसके आसपास के क्षेत्रों से प्राप्त जीवाश्म ज्वालामुखीय राख की परतों में दबने से बने हैं। इंडोनेशिया (जावा) के ट्रिनिल गांव में सोलो नदी के किनारे की चट्टानों से प्राप्त जीवाश्म 5 लाख वर्ष पुराने हैं। इन सभी जीवाश्मों का काल निर्धारण पोटेशियम-आर्गन विधि द्वारा किया गया है। पोटेशियम-40 का अर्द्धजीवनकाल 1.31 अरब वर्ष है।

रुबीडियम-स्ट्रांशियम विधि : रुबीडियम-87 प्रकृति से मिलने वाला एक रेडियो एक्टिव तत्व है। विखंडन के बाद यह स्ट्रांशियम का निर्माण करता है। इसका अर्द्धजीवनकाल 49 अरब वर्ष है। लम्बे अर्द्धजीवनकाल के कारण इस विधि का उपयोग बहुत प्राचीन चट्टानों के काल निर्धारण हेतु किया जाता है। सन् 1969 में पृथ्वी पर गिरे एलेन्डो मिटियोराइट, मर्चीसन तथा कुछ ही वर्षों पूर्व 1996 में मंगल से आए उल्का पिण्डों की उम्र का पता लगाने में इस विधि का उपयोग किया गया था।

लेड विधि : कुछ आग्नेय चट्टानों या शैलों में लेड (सीसे) का अस्थाई आइसोटोप Pb-206 पाया जाता है। इस विधि का सिद्धान्त यह है कि मूल मात्रा का आधा यूरेनियम U-238 लेड (Pb-206) में बदल जाता है। बदलाव की इस क्रिया में 447 करोड़ वर्ष लगते हैं। यदि माना जाए कि हमारे पास एक ग्राम यूरेनियम है तो 4 अरब 47 करोड़ वर्षों के बाद वह आधा ग्राम ही रह जाएगा और शेष लेड बन जाएगा। इस प्रकार जीवाश्म में उपस्थित यूरेनियम और लेड की मात्रा का अनुपात ज्ञात कर जीवाश्म की आयु का निर्धारण किया जाता है।

पाइनस : यह दुनिया का सबसे बूढ़ा पेड़ है। इसकी उम्र वार्षिक वलय से पता लगाने के बाद इसकी पुष्टि कार्बन डेटिंग विधि से भी की गई।

अन्य विधियों की तरह इस विधि की भी कई कमियां हैं। जैसे इस विधि से सिर्फ उन्हीं जीवाश्मों का आयु निर्धारण किया जा सकता है जिनमें यूरेनियम मिलता है; इससे बहुत पुराने जीवाश्मों की ही आयु जानी जा सकती है; यूरेनियम से बने लेड का पानी में बह जाना भी सम्भव है। ऐसी स्थिति में यूरेनियम व लेड का अनुपात बदल जाता है व आयु निर्धारण गलत हो सकता है। करोड़ों वर्ष पुराने जीवाश्म की आयु में इससे अधिक अंतर नहीं पड़ता। इसलिए यह विधि केवल बहुत प्राचीन जीवाश्मों की आयु निर्धारण के लिए ही उपयुक्त है। *(स्रोत फीचर्स)*